दिव्य अमृत वर्षा

श्री चैतन्य गौड़ीय मठ

संस्थापक आचार्य :
परमहंस श्री श्रीमद् भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज जी

श्री श्रीगुरु गौरांगौ जयतः

दिव्य अमृत वर्षा

प्रथम संस्करण

विश्वव्यापी श्रीचैतन्य मठ तथा श्रीगौड़ीय मठ नामक
संस्थाओं के संस्थापक जगद्‌गुरु परमहंस
ॐ 108 श्रीश्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी 'प्रभुपाद'
जी के विशेष कृपाविग्रह

निखिल भारतीय श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ
प्रतिष्ठान के प्रतिष्ठाता, नित्यलीला प्रविष्ट
ॐ 108 श्री श्रीमद् भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज 'विष्णुपाद'
जी के दिव्य प्रवचनों की वर्षा से संग्रहीत कुछ बूंदें हैं

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ,
सैक्टर 20-बी, चण्डीगढ़।

संस्थापक:
नित्य लीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद्
भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज जी

वर्तमान आचार्य:
श्री श्रीमद् भक्ति बल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी

प्रथम संस्करण:
श्रीराम नवमी एवं परम पूज्यपाद ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद्
भक्ति बल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी का 93वां शुभ
आविर्भाव तिथि पूजा महामहोत्सव: 05 अप्रैल, 2017।

प्राप्ति स्थान:

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, ईशोद्यान, श्रीमायापुर, (नदीया) प. बंगाल।

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, 35 सतीश मुखर्जी रोड, कोलकाता।

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, मथुरा रोड, वृन्दावन, (मथुरा) उ. प्र.।

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, सैक्टर, 20-बी, चण्डीगढ़।

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, 3399, हरिमन्दिर गली,
पहाड़गंज, नई दिल्ली।

दिव्य अमृत वर्षा

प्रस्तुत '**दिव्य अमृत वर्षा**' पुस्तिका नन्दनन्दन भगवान श्रीकृष्ण जी के निजजन व मेरे गुरुदेव, परम आराध्य श्रील भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज विष्णुपाद जी के दिव्य प्रवचनों की अमृत–वर्षा से संग्रहीत कुछ बूंदें हैं। इन दिव्य प्रवचनों की बूंदों को हमने वर्तमान समय में गौड़ीय वैष्णवों में Senior Most Vaishnav, परम पूज्यपाद त्रिदण्डि स्वामी श्री श्रीमद् भक्ति बल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी के द्वारा रचित अखिल भारतीय श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के संस्थापक के 'पावन जीवन चरित्र' नामक ग्रन्थ से एकत्रित की हैं।

प्रस्तुत पुस्तिका को '**दिव्य अमृत वर्षा**' शीर्षक देने का विशेष कारण ये है कि श्रील गुरुदेव 70 के दशक में पंजाब के एक प्रांत अमृतसर में श्रीहरिनाम–संकीर्तन के प्रचार के लिये आये तो वहाँ के स्थानीय भक्तों ने उनके कार्यक्रम के इश्तिहार की Heading '**अमृत वर्षा**' दी, जो कि श्रील गुरुदेव जी को बड़ी पसन्द आयी और उन्होंने अपने दिल की खुशी, अपने प्रवचन में भक्तों को बतायी।

उन्हीं की प्रसन्नता के लिये, उन्हीं के दिव्य–प्रवचनों की वर्षा की दिव्य बूंदों के उपहार 'दिव्य अमृत वर्षा' को आप सभी के लिये प्रस्तुत किया जा रहा है। प्रस्तुत पुस्तिका को आपके हाथों तक पहुँचाने के लिये जिन्होंने इन दिव्य बूंदों को एकत्रित किया, प्रूफ रीडिंग करके इसका संशोधन किया व डिज़ाइनिंग करके इस पुस्तिका पर चार चाँद लगाये ---------- श्रील गुरुदेव उन सबको आशीर्वाद दें ताकि सभी श्रीकृष्ण–प्रेम के पथ पर और अधिक आगे बढ़ें।

वैष्णव दासानुदास,
भक्ति विकास वामन।

परिचय एक नज़र में

प्राकट्य	18 नवम्बर 1904।
प्रकट स्थान	कांन्चनपाड़ा, ज़िला फरीदपुर, बंगला देश।
माता जी	श्रीमती शैवालिनी देवी।
पिता जी	श्री निशिकान्त देवशर्मा वन्द्योपाध्याय जी।
माता–पिता द्वारा दिया नाम	श्रीहेरम्ब कुमार।
दीक्षा गुरु	नित्यलीला प्रविष्ट ॐ 108 त्रिदण्डिस्वामी श्री श्रीमद् भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर 'प्रभुपाद'जी।
मन्त्र–दीक्षा	श्रीराधाष्टमी, नवम्बर 1927।
गुरुदेव प्रदत्त दीक्षा नाम	श्रीहयग्रीव दास ब्रह्मचारी।
संन्यास	सन् 1944।
संन्यास–गुरु	नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद त्रिदण्डिस्वामी श्री श्रीमद् भक्ति गौरव वैखानस महाराज जी।
संन्यास के बाद का नाम	त्रिदण्डिस्वामी श्री श्रीमद् भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज जी।
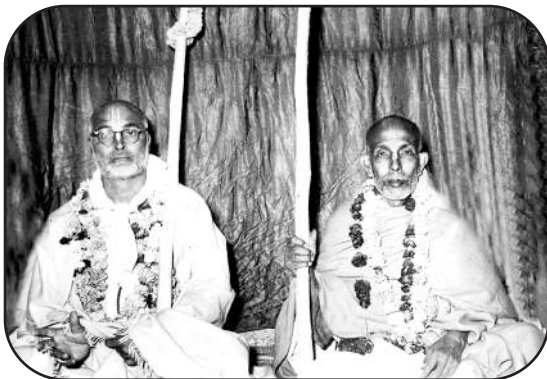
भगवान् की माया से मोहित, कामना–वासना से पागल बद्ध जीव, श्रीविग्रह का चिन्मय स्वरूप दर्शन करने में असमर्थ होते हैं। यहाँ तक कि यदि भगवान् साक्षात् उनके सामने उपस्थित हो जाएँ तो भी वह उनको भगवान् रूप से पहचान नहीं सकेंगे। शुद्ध–भक्ति नेत्रों के द्वारा ही भगवान् की अनुभूति हो सकती है। भगवान् के दर्शनों के लिए जो योग्यता चाहिए, उसको अर्जित किए बिना भगवत्–दर्शन नहीं होता है।

कई बातें सत्य होने से भी वह सभी को, सभी समय नहीं कही जा सकतीं। इसलिए विद्वान् व्यक्ति, ग्रहण करने का अधिकारी देखकर ही उसके अधिकार के अनुसार, उसे उपदेश देते हैं।

अच्छे व्यक्ति को अच्छा बनाने की ज्यादा ज़रूरत नहीं होती। हाँ, यदि खराब व्यक्ति को अच्छा बनाया जा सके, तभी तो प्रचार का सही फल समझा जाएगा।

जो भगवान के लिए अन्य वस्तुओं की आसक्ति को नहीं छोड़ सकते, भगवान के इलावा अन्यान्य दुनियावी वस्तुओं को जो जकड़ कर रखना चाहते हैं, वे कभी भी भगवान् को प्राप्त नहीं कर सकते।

दुनियादारी का बहुत सा ज्ञान व योग्यता रहने पर भी, आत्मा व परमात्मा को समझने की विशेष योग्यता जब तक अर्जित नहीं हो जाती, तब तक आत्मा व परमात्मा की अनुभूति नहीं होती।

सद्‌गुरु के श्रीचरणों में रहकर व उनके पद – चिन्हों पर चलकर ही, शरणागत व्यक्ति के हृदय में ही तत्व – वस्तु का आविर्भाव होता है।

प्राकृत मन व बुद्धि की सहायता से गीता का वास्तविक अर्थ समझना सम्भव नहीं है। शरणागत के हृदय में श्रीभगवान व श्रीभगवान की दिव्य – वाणी स्वयं प्रकटित होती है।

जिस प्रकार, वृक्ष की जड़ में पानी देने से वृक्ष की टहनी, फूल पत्ता व तना इत्यादि सब तृप्त हो जाते हैं; जिस प्रकार पेट में खाना देने से पूरा शरीर व सब इन्द्रियाँ तृप्त हो जाती हैं, उसी प्रकार सब कारणों के कारण, सभी प्राणियों के साथ सम्बन्धयुक्त, अद्वयज्ञानतत्व, सर्वव्यापक, अच्युत, श्रीहरि की सेवा के द्वारा सभी प्राणियों की सेवा या तृप्ति हो जाती है।

भगवान् की आराधना करने के लिये भगवद् – तत्व को समझने की ज़रूरत है।

श्रीकृष्ण – भक्ति अनुशीलन का सर्वोत्तम साधन श्रीनाम – संकीर्तन है।

जब तक भोग का विचार प्रबल रहेगा एवम् श्रीभगवान् की ओर चित्तवृत्ति परिवर्तित नहीं होगी, तब तक व्यक्तिगत, परिवारगत, व समाजगत स्थाई शान्ति प्राप्त करना सम्भव नहीं है।

श्रीभगवान् के साथ जिनकी प्रीति है, उनकी श्रीभगवान् से सम्बन्धित जितनी भी वस्तुएँ हैं या भगवान से सम्बन्धित जितने भी व्यक्ति हैं, उन सबके साथ प्रीति होना स्वाभाविक है।

सर्व – साधारण व्यक्ति के लिए भगवद् – भक्ति – अनुशीलन हेतु, श्रीचैतन्य महाप्रभु जी ने श्रीकृष्ण – नाम – संकीर्तन को ही श्रेष्ठ और सुगम साधन निर्दिष्ट किया है।

शुद्ध – प्रेममय भक्त के द्वारा प्रकटित भगवान के श्रीविग्रह और भगवान के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं है, यह दोनों ही प्रकृति के अतीत, वैकुण्ठ वस्तु व दिव्य हैं।

काम – क्रोध व लोभादि शत्रुओं को हम अपनी शक्ति के द्वारा परास्त नहीं कर सकते। श्रीकृष्ण जी के श्रीचरणों में आत्म समर्पण करने से, वे ही उन सभी रिपुओं की ताड़ना से हमारी रक्षा करेंगे।

भगवान श्रीकृष्ण, शरणागत के रक्षक व पालक हैं।

समस्त धर्म, समस्त अपेक्षित कर्तव्य परित्याग करके श्रीकृष्ण में एकान्त भाव से शरणागत होने से श्रीकृष्ण अपेक्षित कर्तव्यों को न करने या न कर पाने के कारण– इससे होने वाले दोषों से हमारी हरेक प्रकार से रक्षा करेंगे।

श्रीकृष्ण का नित्यदास है ये जीव और इसका स्वरूपगत धर्म एवं कर्तव्य है – श्रीकृष्ण की सेवा करना।

श्रीकृष्ण–सेवा द्वारा ही पितृ–मातृ ऋण परिशोध होता है एवं सभी के प्रति, सभी प्रकार के कर्तव्य ठीक प्रकार से सम्पादित होते हैं।

यदि कोई हिंसामूलक कार्य करता है तो उसके प्रतिकार के लिए प्रतिहिंसामूलक कार्य करना हरि–भक्त के लिए उचित नहीं है। ये सब प्रतिकूल व्यवहार सहन कर पाने से ही हरिभजन होगा, नहीं तो जिस उद्देश्य से संसार छोड़कर मठ में आना हुआ है, वह व्यर्थ हो जाएगा।

अनर्थ–युक्त साधकों को चाहिए कि वे दूसरों को उपदेश देने का हठ छोड़ दें तथा गुरु–वैष्णवों की कृपा प्रार्थना करते हुए, विष्णु व वैष्णवों की प्रसन्नता के लिए हरि–कीर्तन के लिए प्रयास करें।

जिस प्रकार रोशनी को लाए बगैर अन्धकार को अन्धकार नहीं समझा जाता है, इसी प्रकार 'सत्' के अनुभव किये बिना 'असत्' को असत् भी नहीं समझा जा सकता।

भगवान् का कोई कारण नहीं है। वे अकारण हैं। उनके प्रति समर्पित एकान्त-भक्त को ही उनकी कृपा से, उनके दर्शन व उनकी अनुभूति सम्भव है।

कृष्णेतर-वाँच्छा ही हमारे दोषों का मूल कारण है।

बड़ा कहलाने की आकांक्षा रहने से व दूसरों से सम्मान प्राप्ति की इच्छा रहने से, दूसरों से मान-सम्मान, सेवा-पूजा न मिलने पर सदा ही क्षुब्धता और अशान्ति भोग करनी होगी।

अपने प्रियतम और परम-सेव्य श्रीभगवान् का सम्बन्ध जीव मात्र में दर्शन करके मानद हो जाने पर, निर्विघ्नता से श्रीहरि-भजन का सुयोग होता है एवं हृदय में स्वाभाविक दीनता आदि गुण आ जाते हैं। यही नहीं, इन गुणों के आ जाने से वास्तविक शरणागति प्राप्त करने की समर्थता आती है।

श्रीभगवान् में और अनन्य-भक्त में गलती की कल्पना करने से पहले, अपने चित्त को उत्तम रूप से भक्तिभाव से परीक्षा करके देखो तो पता लगेगा कि दोष कहाँ पर है।

भोग – प्रवृत्ति अन्य – संग कराती है, जबकि त्याग – प्रवृत्ति श्रीभगवद् – मिलन की हमराही बन जाती है।

निरन्तर श्रीकृष्ण नाम के अनुकूल अनुशीलन के द्वारा अर्थात् श्रीकृष्ण नाम के श्रवण, कीर्तन व स्मरण आदि के द्वारा श्रद्धालु व्यक्ति, धीरे – धीरे श्रीकृष्ण का सान्निध्य प्राप्त करने में सफलता प्राप्त कर लेते हैं।

भगवद् – भक्त अथवा भगवान के सेवक की पदवी प्राप्त करने की इच्छा, श्रेष्ठ – श्रेष्ठ देवता भी रखते हैं। थोड़े से भाग्य से कोई भी भगवद् – भक्त नहीं कहला सकता। पूरे ब्रह्माण्ड में कोई भी पदवी, भगवद् – भक्त की पदवी के बराबर नहीं हो सकती।

भगवद् – भक्त की अमर्यादा करने वाला, तत्वहीन व्यक्ति मूढ़ है, और कुछ नहीं। अपने सौभाग्य को अपने पैरों तले कुचलने वाला ही, भगवद् – सेवक को तुच्छ समझता है।

भगवान के भक्त की दासता करना ही श्रीभगवद् – प्राप्ति का मुख्य उपाय है।

श्रीकृष्ण – प्रेम से श्रेष्ठ किसी और लोभनीय वस्तु की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

भोगों का फल, तीन प्रकार के क्लेश प्राप्त करना होता है और मुक्ति का फल, मात्र अपने दु:खों से छुटकारा है; जबकि भक्ति आनन्द की हिलोरें लेने वाला अथाह समुद्र है।

कृष्ण-प्रेम ही जीव का प्रयोजन है।

भगवान् सर्वशक्तिमान हैं—ऐसे दृढ़ विश्वास वाला व्यक्ति ही साधु है। श्रद्धालु व्यक्तियों को पहले साधुसंग मिलता है। तत्पश्चात् सद्गुरु के चरणों का आश्रय कर भजन शुरु करते समय साधक में चार प्रकार के अनर्थ होते हैं-स्वरूप-भ्रान्ति, असद्-तृष्णा, हृदय-दौर्बल्य तथा अपराध। यत्न के साथ साधन-भक्ति का अनुशीलन करने से धीरे-धीरे अनर्थ चले जाते हैं। साधन-भक्ति के प्रति उदासीन हो जाने से हमें शीघ्रता से मंगल की प्राप्ति नहीं होती।

सर्वकारण-कारण, स्वत: सिद्ध भगवान् को उनकी कृपा के बिना कोई नहीं जान सकता।

चूँकि भगवान् और भगवान् द्वारा कहे गए वाक्यों में भेद नहीं होता, इसलिये अशरणागत व्यक्ति भगवान् के उपदेशों का तात्पर्य समझने में असमर्थ रहता है।

स्वत: सिद्ध वस्तु के दर्शन की पद्धति, उनकी कृपा आलोक के अतिरिक्त अन्य उपाय से सम्भव नहीं हो सकती।

सम्बन्ध – ज्ञान के उदय हुये बिना कभी भी भगवान् में प्रीति नहीं हो सकती। सम्बन्ध – ज्ञान के द्वारा ही प्रीति होती है।

अभिमान ही कर्म का प्रवर्तक है। प्राकृत अस्मिता कि मैं संसार का हूँ, ये भावना या वृत्ति परित्यज्य है किन्तु अप्राकृत अस्मिता कि मैं भगवान् का दास हूँ, इस प्रकार की वृत्ति परित्यज्य नहीं है।

भगवान् में स्वार्थबोध अर्थात् भगवान् ही मेरी परम आवश्यकता हैं, ऐसा ज्ञान होने पर मैं अपने को एवं अपना कह कर जो कुछ है, वह सब भगवान् को अर्पित कर पाऊंगा। इस प्रकार की अवस्था में ही भगवान् में प्रीति और प्रेम होना सम्भव है।

सद्गुरु या शुद्ध – भक्त की कृपा से भगवान से मेरा क्या सम्बन्ध है, इस दिव्य ज्ञान का उदय होता है। सम्बन्ध – ज्ञान से पहले भगवान् की आराधना सम्भव नहीं होती। पारमार्थिक जीवन की प्रथम सीढ़ी–सम्बन्ध – ज्ञान ही है।

विष्णु – प्रसाद (अर्थात् शास्त्र – विधान के अनुसार विष्णु को निवेदित द्रव्य) को ग्रहण कर के समस्त पापों से मुक्त हुआ जा सकता है।

भगवत् – प्रेमी कभी भी, किसी भी अवस्था में किसी के प्रति हिंसा नहीं कर सकता।

Means are justified by the ends – उद्देश्य के द्वारा ही साधन की शुद्धता व अशुद्धता पता चलती है।

भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र जी की प्रसन्नता में ही तमाम समस्याओं का समाधान है।

संग ही मनुष्यों को सुपथ अथवा कुपथ की ओर प्रेरित करता है। संग से ही मनुष्यों की वृत्ति उदित व विकसित होती है। साधु–संग को छोड़कर रुचि–परिवर्तन करने का व व्यक्ति का अच्छा स्वभाव बनाने का कोई और सहज एवं सुनिश्चित रास्ता नहीं है।

श्रीकृष्ण ही जिनके साध्य और साधन हैं, ऐसे भक्त ही श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के सेवक हैं। इस मठ के सेवक विश्व के सब जीवों का स्वार्थ श्रीकृष्ण के चरणों में ही समझते हैं। इसलिए कोई कपटता करे तो कहा नहीं जा सकता अन्यथा वे अन्य–अन्य मनुष्यों को श्रीकृष्णेतर विषयों से सम्बन्धित उपदेश कैसे प्रदान कर सकते हैं?

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, श्रीचैतन्य देव द्वारा आचरित और प्रचारित पथ में तथा श्रीमद्भागवत और पाँचरात्रिक–मार्ग में मनुष्य मात्र का वास्तविक कल्याण सुनिश्चित समझता है इसलिये न तो वह स्वयं किसी अलग अर्थात् समय नष्ट करने वाले रास्ते पर चलता है व न ही किसी व्यक्ति को उस पर चलने का उपदेश देता है। संक्षेप में अनन्य कृष्ण–भक्ति ही इस मठ का प्राण है।

श्रीभगवद – प्रेम की प्राप्ति के लिये जो मठ का आश्रय लेते हैं वे त्याग या भोग की कसरत में अपने मूल्यवान समय और शक्ति का अपव्यय नहीं करते। वे तो श्रीभगवद्–प्रीति के अनुकूल और प्रतिकूल को समझकर शास्त्र और महाजनों के द्वारा बताये गये रास्ते के अनुसार ही विषयों को ग्रहण करते हैं व त्याग करते हैं। वास्तविकता भी यही है कि युक्त – वैराग्य ही भक्ति का सहायक है।

शुद्ध – भक्त का संग ही भक्ति का हेतु एवं पोषक है।

निष्कपट सेवा ही साधुसंग तथा श्रेष्ठसंग की प्राप्ति का अचूक उपाय है।

सज्जनों का अथवा सेवा करने के इच्छुक एवं श्रीकृष्ण का अन्वेषण करने वाले साधकों का कभी अमंगल नहीं होता।

भक्त – वत्सल भगवान श्रीहरि अपना भजन करने वाले साधकों को विभिन्न प्रकार से सत्मार्ग का प्रदर्शन करते हुये, उन्हें अपने चरणकमलों के मधु को पान करने का सुनिश्चित सुयोग प्रदान करते रहते हैं।

गुरु का अर्थ होता है – अज्ञान नाशकारी। चूँकि अखण्ड ज्ञान तत्व – भगवान् के आविर्भाव से अज्ञान दूरीभूत हो जाता है, इसलिये मूल गुरु – श्रीभगवान् हैं।

जिन्होंने हमें साक्षात् रूप से आकर्षित कर भगवान् की सेवा में नियोजित किया है, जो भगवान् की ही दूसरी मूर्ति हैं—वे मेरे श्रीगुरुपादपद्म हैं—विश्वव्यापी श्रीचैतन्य मठ और श्रीगौड़ीय मठों के प्रतिष्ठाता, नित्यलीला प्रविष्ट प्रभुपाद श्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर।

तृतीय गुरुपादपद्म हैं—वैष्णवगण। गुरुदेव जैसे शिष्य को हमेशा सेव्य की सेवा में नियोजित रखते हैं, उसी प्रकार वैष्णव लोग भी मुझे मेरे परमाराध्य की सेवा में नियुक्त रखते हैं।

इसके अतिरिक्त शिष्य लोग भी एक प्रकार के गुरु हैं। वे शिष्य रूप में रहते हुये भी वास्तविक रूप में गुरु का काम ही करते हैं; क्योंकि शिष्यों के रहते गुरु गलत कार्य नहीं कर सकता। ये भी एक तरह का शासन है व गुरु का कार्य है।

यदि श्रीकृष्ण में प्रीति नहीं हुई, मेरे प्रभु की सेवा नहीं हुई, तब ऐसे त्याग की एक कौड़ी कीमत भी नहीं है, बल्कि यह एक फल्गु त्याग है। इस प्रकार के बहिर्मुख त्यागी, ब्रह्मचारी की अपेक्षा भगवत्-सेवा परायण व्यक्ति हमारा प्रिय है और ऐसे त्यागी व ब्रह्मचारियों से कई गुणा श्रेष्ठ है।

अधोक्षज वस्तु भगवान श्रीहरि की अप्राकृत इन्द्रियाँ हैं। उन्हीं इन्द्रियों के द्वारा वे अप्राकृत लीलायें करते हैं। उनकी सब लीलायें नित्य हैं। उस लीला विलास के ईंधन के रूप में प्रकाशित होना ही प्रत्येक जीव का आत्मधर्म है।

श्रीकृष्ण नित्य हैं, उनकी शक्ति भी नित्य है तथा उनकी शक्ति के अंश जीव भी नित्य हैं, इसलिए दोनों का सम्बन्ध भी नित्य है। चूँकि शक्ति, शक्तिमान के अधीन होती है इसलिये जीव कृष्ण का नित्यदास है। श्रीकृष्ण की प्रीति ही जीव का प्रयोजन है तथा श्रीकृष्ण-प्रेम प्राप्ति का अभिधेय (साधन) केवल भक्ति है।

गुरु जी की सेवा साक्षात् भगवान् की सेवा है। कारण, अपने गुरुदेव जी में भगवान् के प्रति प्रीति को छोड़कर और कुछ भी मैंने नहीं देखा। वे ये जानते ही नहीं कि श्रीकृष्ण की सेवा को छोड़कर और भी कोई स्वार्थ होता है।

वैष्णव-संग व वैष्णव-सेवा को छोड़कर जीव के मंगल का और कोई दूसरा रास्ता नहीं है।

वैष्णव-सेवा के फल से एवं शास्त्रादि श्रवण के फल से जीवों को भगवान् की महिमा का अनुभव होता है और जीव भगवान् की उपासना करने के लिए उतावले होते हैं।

स्थूल रूप से समस्त इन्द्रियों को दमन कर सकने से ही भक्त बन जाएँगे, इसकी भी तो कोई गारन्टी नहीं है। यदि ऐसा होता तब तो जगत् में जितने हिजड़े हैं, वे सब हरिभक्त होते।

उपवास करने से अर्थात् व्रत में भूखा रहने से ही क्या खाने की प्रवृत्ति समाप्त हो जायेगी? इसी प्रकार विषयों को ग्रहण न करने पर भी उन्हें ग्रहण करने की प्रवृत्ति दूर नहीं होगी। इसका सही तरीका यह है कि श्रेष्ठ–रस का आस्वादन होने से निकृष्ट रस के प्रति मोह अपने आप हट जाता है। भगवत्–प्रेम–रस का आस्वादन होने से श्रीकृष्ण व उनके भक्तों की सेवा छोड़कर दुनियावी भोगों के प्रति मोह नहीं रहता। इसे ही युक्त वैराग्य कहते हैं।

मेरी जो पूजा कर सकता है, स्तव, स्तुति कर सकता है अर्थात् मेरी तारीफ करता है या अपने दुनियावी स्वार्थों के लिये मेरी खुशामद करता है, उसका संग मेरे लिये हितकर नहीं है। जो शासन करता है, नियन्त्रण करता है, मेरी गलतियाँ दिखवाता है; उसका संग ही मेरे लिये हितकर है।

सांसारिक शिक्षा या अशिक्षा पर हरिभक्ति निर्भर नहीं करती; यदि ऐसा होता तो सभी विद्वान् हरिभक्त होते।

जिसने श्रीकृष्ण–भजन को ही एक मात्र जीवन का उद्देश्य समझ लिया है, उसे सांसारिक शिक्षा प्राप्ति के लिये समय व्यय करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

भाषा के द्वारा श्रीकृष्ण – भक्ति का प्रचार नहीं होता; हाँ, भाषा का अच्छा ज्ञान होने से तुम्हारी विद्वता या पांडित्य का प्रचार हो सकता है।

जिसके हृदय में भगवत् – प्रीति है, उसके द्वारा ही भगवत् – प्रीति का प्रचार होगा।

भक्ति का वैशिष्ट्य ही ये होता है कि इसमें इन्द्रिय – तृप्ति के लिए गुरु, वैष्णव या भगवान् को भोग करने की चेष्टा नहीं होती (अर्थात् गुरु, वैष्णव या भगवान् से किसी व्यक्तिगत स्वार्थपूर्ति की चेष्टा नहीं होती।) इसमें प्राकृत और कर्ममार्गीय जाति का या उससे सम्बन्धित विचार का कोई स्थान नहीं होता। भगवान् जिसकी सेवा जिस प्रकार से ग्रहण करना चाहते हैं, वे उसी भाव से उक्त सेवा को करके अपने सेव्य को प्रसन्न करने की चेष्टा करते रहते हैं।

साधु – भक्तों के संग से ही जीवों के हृदय में भगवद् – भक्ति प्रकाशित होती है।

जीव के रोग या कष्ट का मूल कारण उसकी स्वरूप – विस्मृति है।

अद्वयज्ञान तत्व–श्रीभगवान से विमुखता ही अज्ञान की प्राप्ति और स्वरूप – विस्मृति का कारण है।

जीव चित् – कण है, यह पूर्ण या असीम 'चित् – तत्व' की शक्ति का अंश है, इसलिये जीव की इच्छा और सुख – समृद्धि पूर्ण – चित् – तत्व श्रीभगवान् के ऊपर ही निर्भर करती है।

विश्ववासियों में एकता व सुखशान्ति एकमात्र श्रीभगवान को केन्द्र करके ही सम्भव होगी, क्योंकि सभी जीवों का स्वार्थ और सुख भगवान् में ही केन्द्रित है।

भगवान् शब्द का अर्थ है – 'सर्वशक्तिमान'; जिनमें समस्त ऐश्वर्य, बल, यश, सौन्दर्य, ज्ञान और वैराग्यता की पूर्णता है, उन्हें ही भगवान कहते हैं।

जो शक्ति श्रीकृष्ण को सर्वोत्तम रूप से आह्लाद प्रदान करती हैं अर्थात् आनन्द प्रदान करती हैं, वे ही आह्लादिनी का सार–महाभाव – स्वरूपिणी, श्रीमती वृषभानुनन्दिनी श्रीराधिका जी हैं।

ईश्वर में विश्वास रखने वाला व्यक्ति देखता है कि सारे जीव ही भगवान् के हैं। इसलिये वह स्वाभाविक रूप से ईश्वर की शक्ति के अंश किसी भी जीव की हिंसा नहीं करता। ईश्वर के सम्बन्ध से, ईश्वर में विश्वास रखने वाले व्यक्ति की सब जीवों में प्रीति होती है।

परमेश्वर से सम्बन्ध—रहित प्रीति का ही दूसरा नाम "काम" है – ये ही हिंसा, द्वेष व अशान्ति का मूल कारण है।

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु जी ने नन्दनन्दन श्रीकृष्ण को ही सर्वोत्तम आराध्य रूप से निर्देश किया है। जीव की हर प्रकार की इच्छा एकमात्र नन्दनन्दन श्रीकृष्ण जी की आराधना से ही पूरी हो सकती है।

भगवद्-तत्व को समझने के लिये हमें जिस ज्ञान व अधिकार की आवश्यकता है, वह ज्ञान व अधिकार न आने तक सांसारिक बहुत सी योग्यता रहने पर भी हम उसकी (उस भगवद्-तत्व की) उपलब्धि नहीं कर पायेंगे।

घमण्ड से भगवान् को नहीं जाना जा सकता, कारण, वे unchallengable truth हैं। उनका न तो कोई कारण है, न कोई उनके समान है, उनसे अधिक होने का तो प्रश्न ही नहीं है। अत: उन भगवान् को जानने के लिये उनकी कृपा के अतिरिक्त किसी अन्य उपाय को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

यदि भगवद्-तत्व की उपलब्धि करनी है तो प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवा-वृत्ति लेकर तत्वदर्शी ज्ञानी गुरु के पास जाना होगा।

भगवान असमोर्ध्व तत्व हैं अर्थात् भगवान के न तो कोई बराबर होता है और न ही उनसे श्रेष्ठ, इसलिये उन्हें अपनी किसी योग्यता के आधार पर नहीं जाना जा सकता।

वैष्णवता का जन्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। वैष्णवता नित्य होती है।

भगवान् की इच्छा ही भगवान् को प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है और भगवान् की इच्छा का अनुसरण करने का ही दूसरा नाम भगवान से प्रीति व भगवान की भक्ति है।

भगवद् – भक्त हमेशा भगवान् का सुख चाहते हैं। यदि कोई व्यक्ति भगवान् के सुख की इच्छा करता है तो उसकी इस भावना व क्रिया के कारण भगवान उसके गुलाम हो जाते हैं। भगवान् हमेशा अपने भक्तों का सुख चाहते हैं। इसलिये भक्त को प्रेम करने से भगवान् उसके वशीभूत हो जाते हैं और यही कारण है कि भक्त को प्रेम करने वाले भगवान् की कृपा अति सहजता से प्राप्त कर सकते हैं।

आचार्यों के सारे आचरण ही जगत के जीवों को शिक्षा देने के लिये होते हैं।

जिन्हें भगवान् की आवश्यकता है, उन्हें अवश्य ही भक्तों का संग करना होगा।

पिछले जन्मों की व अब तक जो जीवन बीता, उस बीते जीवन की सुकृतियाँ नहीं होने से जीव की सत्संग में रुचि नहीं होती।

पाप से पुण्य और असत्कर्म से सत्कर्म श्रेष्ठ है परन्तु भगवद् – भक्ति या वैष्णवता, पाप और पुण्य तथा सत् एवं असत् कर्मों से अतीत अप्राकृत आत्मवृत्ति है।

गुण और संख्या कभी भी एक साथ नहीं मिलते। गुणों की अधिकता में संख्या एवं संख्या के अधिक होने पर गुणों का कम होना अवश्यम्भावी है। सर्वोत्तम आध्यात्मिक उन्नति के शिखर पर पहुँचे व्यक्ति संख्या में कम भी हों तो भी उन्हीं के द्वारा जगत् के लोगों का कल्याण होता है किन्तु गुणहीन, चरित्रहीन व्यक्ति संख्या में अधिक होने पर भी उनसे किसी का कल्याण नहीं होता।

भगवान् का एक नाम "कृष्ण" है। कारण, वे सब को आकर्षित करके आनंद प्रदान करते हैं एवं स्वयं आनन्दित होते हैं। श्रीकृष्ण हर विषय में सर्वोत्तम हैं, अखिल रसामृत मूर्ति हैं, वे सच्चिदानंद विग्रह हैं, अनादि हैं व सबके आदि हैं। वे समस्त कारणों के भी कारण हैं। अतः वे एक मात्र विशुद्ध-प्रेम द्वारा ही आराधनीय हैं।

श्रीकृष्ण को भूलना ही जीवों के दुःखों का मूल कारण है।

श्रीकृष्ण को याद करने का सबसे सहज और निश्चित उपाय उनका नाम-संकीर्तन है। जाति, धर्म, पुरुष या स्त्री के भेदभाव के बिना व वृद्ध-युवक व बालक, गरीब-अमीर, विद्वान-अनपढ़ आदि अवस्थाओं के भेदभाव के बिना सभी भगवान् का नाम-संकीर्तन करने के अधिकारी हैं।

ध्यान, यज्ञ और श्रीमूर्ति की पूजा करने में असमर्थ कलिहत जीवों के उद्धार का एकमात्र उपाय साक्षात् श्रीभगवान् के नाम का संकीर्तन करना ही है।

आराधना का उद्देश्य है—चित्त का भगवान् में आवेश और भगवान में तन्मयता को प्राप्त करना।

एकमात्र भगवान् की उपासना से ही जीवों को सब प्रकार के मंगल की एवं शान्ति की प्राप्ति हो सकती है।

अपनी स्थूल और सूक्ष्म इन्द्रियों के तर्पण करने की प्रचेष्टा को ही काम कहते हैं तथा कामना के पूरी होने में बाधा पड़ने से ही क्रोध होता है। इन्हीं काम व क्रोध से सब प्रकार के अनर्थ होते हैं।

भगवान् का भक्त कभी भी किसी दूसरे जीव का बुरा नहीं करता।

मूर्ख व्यक्ति अज्ञानतावश दूसरे जीवों के प्रति हिंसा करके सुख का अनुभव करता है। परन्तु किसी के प्रति हिंसा करने से हमें भी हिंसा का सामना करना पड़ेगा, जिससे कोई फायदा नहीं होने वाला।

भगवत्-प्रेम के अनुशीलन से जगत् में स्थायी शान्ति संस्थापित हो सकती है, यही श्रीचैतन्य महाप्रभु जी की शिक्षा है।

एक मात्र अनावृत स्वरूप, नित्य प्रकाशवान, अद्वय ज्ञान स्वरूप—श्रीहरि की आराधना करने में तल्लीन व्यक्ति ही साधु है।

व्यक्ति त्यागी बनने से ही साधु नहीं होता है; क्योंकि साधु तो न गृहस्थी है, न ही त्यागी। यदि सद्वस्तु भगवान में प्रीति नहीं है तो गृहस्थी, त्यागी – किसी को भी साधु नहीं कहा जा सकता। ये बात बिल्कुल ठीक है कि साधु किसी भी आश्रम में रह सकता है।

इन्द्रिय-दमन और वैराग्य के द्वारा कुछ समय के लिए चित्त शुद्धि होने पर भी पूर्ण रूप से चित्त की मलिनता नहीं जाती। भगवान के महिमा गुण के श्रवण व कीर्तन के बिना चित्त की मलिनता पूर्ण रूप से दूर नहीं हो सकती। चित्त की शुद्धि का केवल यही सर्वोत्तम तरीका है।

वैराग्य शब्द का एक अर्थ है—विगत 'राग' अर्थात् संसार के विषय भोगों व सम्बन्धों से अनासक्ति और दूसरा अर्थ है—परम-पुरुष भगवान में विशिष्ट 'राग'। वास्तव में परम पुरुष भगवान में जिस मात्रा में अनुराग बढ़ता है, उसी मात्रा में संसार के प्रति आसक्ति स्वाभाविक ही कम हो जाती है। श्रीभगवान् में प्रीति हुए बिना संसार के प्रति जो अनासक्ति है वह कष्ट की कल्पना मात्र है, स्वाभाविक वैराग्य नहीं है।

भक्ति, आत्मा की नित्य वृत्ति है। साध्य-वस्तु की प्राप्ति के लिए भक्ति केवल अनित्य साधन नहीं है।

भक्ति ही साध्य है और भक्ति ही साधन है।

जो भगवान् से प्रेम करते हैं, वे सब जीवों से प्रेम करते हैं।

जीव भगवान् नहीं है, जीव भगवान् का है; जीव तत् नहीं है वह तो तदीय है।

भोग और मोक्ष की कामना को पदाघात न कर पाने तक अर्थात्, भोग व मोक्ष की कामना को पूरी तरह से न छोड़ पाने तक भक्ति का आभास भी उदित नहीं होता।

कामना – वासना की अग्नि में और अधिक ईंधन देते रहने से इस आग को बुझाया नहीं जा सकता, बल्कि वह तो और भी बढ़ती जाती है। इसलिये भोग्य वस्तुओं को जुटाने से स्वेच्छाचारिता को दमन नहीं किया जा सकता।

देश के नेता धर्म और नीति की शिक्षा के विषय में जब तक सचेत नहीं होंगे, तब तक वे देश का वास्तविक कल्याण नहीं कर सकते।

जन्म–जन्मान्तरों के संस्कारों के कारण हम अपने वास्तविक स्वरूप को भूल गए हैं। जिस कारण हम देह – गेह अर्थात् शरीर और घर या उससे सम्बन्धित मायिक वस्तुओं को ही अपना धन और अपना सर्वस्व समझ बैठे हैं। इसलिये हम अपने वास्तविक सर्वस्व – अखिलरसामृत मूर्ति – श्रीकृष्ण की प्राप्ति से वंचित हो गए हैं।

जब तक हमारा अहंकार नहीं बदलेगा, तब तक श्रीकृष्ण का वास्तविक अनुशीलन सम्भव नहीं है।

तदीय भाव में अर्थात् मैं उनका (भगवान का) हूँ– इस भाव में प्रतिष्ठित हुये बिना भक्ति नहीं होती। वेदान्त के सूत्र 'तत्वमसि' का अर्थ यह नहीं है कि तुम वही पूर्ण ब्रह्म हो। बल्कि उसका सही अर्थ है–'तस्य त्वम् असि' अर्थात् तुम भगवान् के हो।

सांसारिक अभिमान से जो भी साधन किया जाता है, वह अध्यात्म – मार्ग में आगे नहीं ले जा सकता।

जब तक इस मायिक barrier को transcend (अतिक्रमण) नहीं किया जायेगा, तब तक परमात्मा का अनुशीलन नहीं हो सकता।

सम्बन्ध – ज्ञान के साथ श्रीकृष्ण और उनके प्रिय जनों की सेवा ही हरिभजन है।

आत्म – ज्ञान में स्थित हुये बिना वैकुण्ठ – भजन अर्थात् वैकुण्ठ वस्तु भगवान की दिव्य महिमा का गान नहीं होता।

हमारे सनातन धर्म के शास्त्रों ने तथा हमारे पूर्वाचार्यों ने कर्म, ज्ञान, योग, व्रत, तपस्या आदि को छोड़कर केवल हरिनाम करने के लिए ही उपदेश दिया है।

श्रीनाम – संकीर्तन ही हज़ारों प्रकार के भक्ति अंगों में सर्वश्रेष्ठ है। श्रीहरिनाम का भजन ही श्रीचैतन्य देव जी की शिक्षा का सार है। श्रीभगवान को बुलाना ही श्रीनाम – भजन है।

यदि हम दूसरे सभी प्रकार के साधनों का मोह छोड़ दें और श्रीनाम और नामी को अभिन्न समझ कर एकान्त भाव से श्रीनाम – भजन कर पायें तो तीव्रता से फल देने वाला इससे श्रेष्ठ और कोई भी साधन नहीं है।

जो लोग सत्य परमेश्वर के साथ अपने स्वार्थ को मिला लेते हैं, परमेश्वर की माया द्वारा उनका अनिष्ट भला किस प्रकार सम्भव हो सकता है?

ज्ञानहीन मनुष्य, नाशवान प्राकृत-वस्तुओं में मग्न रहने के कारण सर्वदा ही भय से ग्रस्त रहते हैं। किन्तु शुद्ध-भक्त और विवेकी मनुष्य ये समझते हैं कि समस्त वस्तुओं के नियन्ता श्रीकृष्ण हैं। इसलिये श्रीकृष्ण के शरणागत-भक्तों को किसी प्रकार का भी भय नहीं होता।

जीवों में जितनी श्रीकृष्ण से दूर रहने की प्रवृत्ति होती है, उतनी ही माया उनमें प्रवेश कर उनको अज्ञान से उत्पन्न दुःख, भय और शोक आदि को प्रदान करती है।

श्रीकृष्ण की इच्छा में अपनी इच्छा को पूर्णतः समर्पित करना ही शुद्ध-भक्ति है और उसके लिये ही हम चेष्टा करते हैं।

आप श्रीकृष्ण के होंगे तो श्रीकृष्ण आपके हो जायेंगे।

मायाबद्ध जीव और शुद्ध-भक्त के विचार कभी भी एक नहीं हो सकते। उनमें भेद होना अवश्यम्भावी है।

उत्साह न होने से कोई भी व्यक्ति किसी भी मार्ग पर उन्नति नहीं कर सकता। इसलिये आप उत्साह के साथ जितना अधिक से अधिक सम्भव हो सके, श्रीभगवान् को पुकारें। संख्यापूर्वक, अपराध त्याग कर माला पर महामंत्र का जप करें।

अपने आप को श्रीकृष्ण की सम्पत्ति मान लेने पर अपनी इन्द्रियों को तर्पण करने का उत्साह नहीं जागेगा। श्रीकृष्ण सेवा के निमित्त नियुक्त होने से ही साधना में आनन्द और उत्साह होगा।

भक्ति – पथ में भगवान् को समर्पण कर देने की ही बात है और इसके लिए अपनी सुख – सुविधा और प्रवृत्तियों की बलि देनी ही होगी। तुच्छ व्यक्तियों के दुःख, भय, शोक आदि को दूर करने के लिए शरीर – मन – वाक्य की बलि देने से तनिक भी लाभ नहीं है।

अनन्त, सर्वशक्तिमान, सच्चिदानंद श्रीकृष्ण को ही इन सबका उपहार देने का विधान है। आप निश्चिन्त होकर भगवान को पुकारें, वे अवश्य ही आपके सभी अनर्थों को दूर कर देंगे।

अपना मंगल चाहने वाले व्यक्ति वैष्णवों की आविर्भाव और तिरोभाव तिथि में उनकी महिमा का श्रवण – कीर्तन व स्मरण करते हैं।

भजनीय भगवान् नित्य हैं, भजन करने वाला भक्त नित्य है और दोनों में सम्बन्ध कराने वाली भक्ति भी नित्य है।

कर्मों के फल को भोगने का जो कानून है, वह भगवान् या भगवान् के पार्षदों पर लागू नहीं होता।

तुम्हारे गुरु जी की सेवा सारी की सारी तुम्हारी ही है। यदि कोई दूसरा कुछ कर दे तो उसके लिए तुम कृतज्ञ रहना। श्रीकृष्ण के संसार की majordomo (बड़े परिवार की सर्वप्रधान गृहिणी) हैं – श्रीमती राधारानी। वह जानती हैं कि श्रीकृष्ण की समस्त सेवाएं उनकी ही करणीय हैं, दूसरा कोई कैसे भी सेवा कर दे, वह कृतार्थ हो जाती हैं, उसकी कृतज्ञ रहती हैं।

नित्य बोधमयी, आनन्दमयी सत्ता ही 'आत्मा' नाम से कही जाती है। मैं आत्मा हूँ और जो मेरा कारण है – वह श्रेष्ठ आत्मा या परमात्मा है।

भगवान् व्यक्ति हैं, किन्तु असीम व्यक्ति हैं। भक्तों के प्रेमास्पद मध्यमाकार वाले होने पर भी बड़े से बड़े और छोटे से छोटे हैं, वे अचिन्त्य शक्ति वाले हैं — यही भगवान् की भगवत्ता है। प्राकृत विशेषता रहित होने के कारण वे निर्विशेष हैं किन्तु अप्राकृत विशेषतायें होने के कारण वे सविशेष हैं।

लीलावतार, युगावतार, मन्वन्तरावतार, पुरुषावतार, गुणावतार, शक्त्यावेशावतार — इन छः प्रकार के मुख्य अवतारों के अतिरिक्त भगवान् जगत् के जीवों को अपनी सेवा प्रदान करने के लिए कृपा पूर्वक 'अर्चाविग्रह' के रूप में भी प्रकट होते हैं। भगवान के श्रीविग्रह को भगवान का अर्चा - अवतार कहते हैं। इस प्रकार भगवान के अर्चावतार को जो पत्थर समझता है, वह नरक में जाता है।

भक्त लोग निर्गुण व अप्राकृत होते हैं। वे अपने दिव्य प्रेम - नेत्रों से भगवान् का वास्तविक स्वरूप दर्शन करते हैं।

भगवान् के आविर्भाव का मुख्य कारण तो भक्त हैं। जैसे पति के विरह से कातर सद्पत्नी का दुःख, पति के अतिरिक्त अन्य किसी प्रतिनिधि के द्वारा, किसी द्रव्य या किसी भी उपाय से दूर नहीं हो सकता, उसी प्रकार भगवान् के अवतीर्ण न होने तक भक्त का विरह - दुःख दूर नहीं होता। इसलिये साधुओं के परित्राण अर्थात् उन्हें दर्शन देकर उनके विरह दुःख को दूर करने के लिये ही भगवान् जगत् में आते हैं।

भगवान् के अदर्शन से जब प्रेमिक–भक्त विह्वल हो उठते हैं, तब भक्त–दुःखहारी भगवान, उनके हृदय में आविर्भूत हो जाते हैं। भगवान् के स्वरूप का दर्शन कर भक्त को परम सुख होता है। पुनः, भगवान् के अदृश्य हो जाने पर भक्त, विरह में रोते हैं एवं अपने प्रेमास्पद के दर्शनों की उत्कंठा से अदृश्य भगवान् के स्वरूप को बाहर प्रकट करते हैं। भक्त द्वारा भगवान के बाहरी प्रकटित इसी रूप को 'प्रतिमा' कहते हैं। चूँकि ये प्रतिमा या श्रीमूर्ति अवरोह मार्ग से प्रकट हुई, इसीलिये यह 'श्रीविग्रह' है।

शरणागत व्यक्ति के हृदय में ही भगवान् अपना स्वरूप प्रकाशित करते हैं। परमात्मा बहुत तर्क, दिमाग या विद्वता द्वारा प्राप्त नहीं होते। जो शरणागत होते हैं, उनके सामने ही परमात्मा स्वयं को प्रकाशित कर देते हैं।

गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के आश्रित प्रत्येक वैष्णव को गले में तुलसी जी की माला और मस्तक आदि अंगों पर तिलक धारण करना अत्यन्त आवश्यक है।

जो भगवान् को नहीं चाहते, सांसार की और–और वस्तुएँ चाहते हैं, वे भगवान् को कैसे प्राप्त कर सकते हैं? शुद्ध–भक्त एकमात्र भगवान् को ही चाहते हैं, अन्य वस्तुओं के लिए आकांक्षा उनके मन में नहीं होती, इसलिये वे ही भगवान् को प्राप्त करते हैं। जो भगवान को चाहेगा, उसे ही तो भगवान मिलेंगे। जो चाहता ही नहीं, उसके पास भगवान क्यों जायेंगे।

जहाँ पर भगवान् के नित्य चिन्मय स्वरूप को स्वीकार किया जाता है, वहीं भगवान् की कृपा से कर्मी को कर्म का, ज्ञानी को ज्ञान का एवं योगी को योग की साधना का फल प्राप्त होता है और जहाँ भगवान् के स्वरूप का अस्तित्व नित्य नहीं माना जाता, वहाँ पर किसी को भी किसी भी साधना के फल की प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि फल दाता भगवान हैं। अच्छी साधना के अच्छे फल के लिये उनके नित्य स्वरूप को मानना ज़रूरी है।

श्रीमन् महाप्रभु जी का कहना है कि श्रीकृष्ण की तटस्था शक्ति से उत्पन्न जीव, श्रीकृष्ण को छोड़कर स्वतन्त्र रूप से कभी भी नित्य सुख प्राप्त नहीं कर सकता।

कृष्ण – प्रेम ही जीव की प्राप्त करने योग्य चरम वस्तु है। श्रीकृष्ण में प्रीति ही जीव का वास्तविक स्वार्थ है एवं वही श्रीकृष्ण प्रीति ही निस्वार्थपरता एवं परार्थपरता है।

श्रीमहाप्रभु जी के अनुसार कलियुग में कृष्ण – प्रीति प्राप्त करने का सर्वोत्तम साधन है – श्रीकृष्ण नाम – संकीर्तन।

श्रीकृष्ण के नाम – संकीर्तन में स्थान या समय आदि का विचार नहीं है। किसी भी जाति – वर्ण के स्त्री – पुरुष, बालक – युवा व वृद्ध –सभी जीव सभी समय श्रीकृष्ण नाम कर सकते हैं।

भगवान् असीम व सर्वशक्तिमान हैं। भक्त की इच्छा को पूरी करने के लिये वे किसी भी स्थान पर मत्स्य – कूर्म – वराहादि किसी भी रूप में अपनी सारी शक्तियों के साथ अर्थात् सर्वशक्तिमान रूप से प्रकट हो सकते हैं।

अर्चावतार, प्रेमिक – भक्तों को साक्षात् दर्शन देते हैं। वे उन्हें अपनी साक्षात् सेवा देकर उन्हें कृतार्थ करते हैं किन्तु कामुक – व्यक्ति अपने कामनेत्रों से भगवान का दर्शन करना चाहते हैं, जो कि असम्भव है। जो भगवान् के अप्राकृत विग्रह को भी दुनियावी बुत या पुतला ही देखते हैं, निर्गुण भगवत् – स्वरूप उनके लिये अप्रकाशित रहता है।

श्रीकृष्ण अखिल रसामृत मूर्ति हैं। भगवान् के अनन्त स्वरूपों में श्रीकृष्ण सर्वोत्तम स्वरूप हैं अर्थात् अवतारी हैं। श्रीकृष्ण सब अवतारों के कारण हैं।

वैष्णव निश्चय ही परम दयालु हैं।

संकीर्तन का अर्थ है—सम्यक् कीर्तन, सुष्ठु कीर्तन अथवा निरपराध कीर्तन। इसके अलावा भगवान् के नाम, गुण, लीला, परिकर, धाम – इन सब का कीर्तन भी संकीर्तन कहलाता है। बहुत से श्रद्धालु व्यक्तियों द्वारा मिलकर उच्च स्वर में होने वाले हरिनाम–कीर्तन को भी संकीर्तन कहते हैं। हरिनाम जप से कीर्तन श्रेष्ठ है। होठों को हिलाये बिना हरिनाम जप करने से जप करने वाले का मंगल होता है। किन्तु कीर्तन से अपना व दूसरे का या यूँ कहें कि दोनों का मंगल होता है।

उच्चकीर्तन द्वारा वृक्ष इत्यादि व पशु–पक्षी आदि जंगम प्राणियों का भी मंगल होता है। इसके इलावा जप से तो चित्त विक्षिप्त भी हो सकता है परन्तु उच्च–संकीर्तन में विक्षेप की आशंका नहीं रहती।

पूर्ण–कारण परमात्मा अथवा भगवान् के प्रति जीवात्मा का अनुराग ही भगवद्–प्रेम कहलाता है।

भगवान् नित्य हैं, जीव भी नित्य हैं तथा उनका परस्पर स्वामी और सेवक का सम्बन्ध भी नित्य ही है। भगवान् की भक्ति ही जीव का प्रयोजन है। इसे ही सनातन–धर्म, वैष्णव–धर्म या आत्म–धर्म कहते हैं। सनातन धर्म व्यापक है, विभु है, विराट है, विशाल है। जबकि ब्राह्मण व क्षत्रिय अदि वर्ण तथा गृहस्थ व संन्यास आदि आश्रम–धर्म, इस आत्म–धर्म तक पहुँचने की सीढ़ी मात्र हैं।

श्रीकृष्ण–शक्ति के अंश—जीव द्वारा श्रीकृष्ण को भूल जाना ही अपराध है। इसी अपराध के कारण स्वरूप–भ्रान्ति और विपरीत बुद्धि होती है। साधु, शास्त्र एवं गुरुदेव की कृपा से जब जीव कृष्ण–उन्मुख होता है, तभी वह समस्त दुःखों से छुटकारा पा लेता है और परम–शान्ति को प्राप्त कर लेता है।

नन्दनन्दन श्रीकृष्ण की अनुरागमयी भक्ति ही जीवन में परम शान्ति प्रदान कर सकती है। श्रीकृष्ण–भक्ति को छोड़कर विश्व–समस्या का स्थायी समाधान सम्भव नहीं है।

अशान्ति का कारण काम अर्थात् काम वासना है।

श्रीकृष्ण के सुख की चेष्टा के द्वारा हम परमानन्द प्राप्त कर सकते हैं। जिस प्रकार प्रकाश के प्रकट होने से अन्धकार भाग जाता है, उसी प्रकार आनन्द के प्रकट होने से निरानन्द अर्थात् दुःख भी भाग जाता है।

श्रीकृष्ण को सुख पहुँचाने की चेष्टा को ही प्रेम कहते हैं। पूर्ण प्रभु की प्रीति ही सबके लिए सुख एवं मंगलदायक है।

काम Self centered activity व प्रेम God centered activity है। काम द्वारा अपने से निकृष्ट, जड़ – वस्तु या दुःख का ही संग होता है जबकि प्रेम द्वारा अपने से श्रेष्ठ वैकुण्ठ – वस्तु अर्थात् भक्त व भगवान् का संग होता है।

श्रीकृष्ण के सुख को छोड़कर अन्य कार्यों में लिप्त होना ही आध्यात्मिक व्यभिचार और अनाधिकार चेष्टा है।

सभी जीवों का स्वार्थ और परमार्थ श्रीकृष्ण – भजन ही है।

शुद्ध – भक्तों की सेवा, शुद्ध – भक्तों का संग और उनकी कृपा के प्रभाव से धीरे – धीरे साधक अनन्य श्रीकृष्ण – भक्ति में रुचि प्राप्त करने लगता है तथा श्रीकृष्ण – भक्ति में रुचि प्राप्त करके ये निष्कपट साधक तमाम गुणमयी एवं लौकिक बाधाओं को पार करके भगवान की प्रेम – भक्ति में प्रतिष्ठित हो सकता है।

शुद्ध – भक्त की कृपा के इलावा शुद्ध – भक्ति प्राप्ति का अन्य कोई भी रास्ता जगत में नहीं है। इसलिए भक्त और भगवान् दोनों की सेवा ही साधक का मुख्य कर्तव्य है। दोनों ही हमारे नित्य – आराध्य हैं।

साधु – भक्त वैकुण्ठ वस्तु हैं। वैकुण्ठ – वस्तु ही बद्ध – जीव को कृपापूर्वक वैकुण्ठ स्थिति में ले जा सकती है। श्रीविष्णु, वैष्णव एवं विष्णु का धाम – तीनों ही वैकुण्ठ हैं अर्थात् कुण्ठा रहित हैं जिनमें माया का कोई प्रभाव नहीं होता। श्रीविष्णु – वैष्णव की सेवा – वृत्ति को वैकुण्ठ – वृत्ति कहते हैं। सिद्धान्त यह है कि वैकुण्ठ ही वैकुण्ठ को दे सकता है।

करोड़ों सत्कर्मों की अपेक्षा श्रीकृष्ण – भक्त का संग और श्रीकृष्ण के भक्तों की सेवा ही वास्तविक मंगल प्रदानकारी है।

परमेश्वर स्वतः सिद्ध तत्ववस्तु हैं। अतः स्वतः सिद्ध होने के कारण उनमें शरणागति के बिना या उनकी कृपा बिना कोई भी उनको जानने व अनुभव करने में समर्थ नहीं होता है।

जीव अपनी चेष्टा से भगवान् को नहीं जान सकता व नहीं समझ सकता है। हाँ, भगवान् यदि कृपा करके जनायें तो जान सकता व समझ सकता है। अशरणागत व्यक्ति जितनी प्रकार की भी चेष्टा क्यों न कर ले, वह परमेश्वर के अस्तित्व की उपलब्धि करने में समर्थ नहीं होता ।

भगवान् के धाम से आने वाले उनके भक्त भी अपने निर्गुण स्वरूप से ही इस जगत में आते हैं और वापस चले जाते हैं।

'भज' धातु से भक्ति शब्द उत्पन्न हुआ है। 'भज' धातु का अर्थ है—सेवा। सेवा का अर्थ है सेव्य का प्रीतिविधान अर्थात् सेव्य को प्रसन्न करना। सेव्य की इच्छा के अनुसार चलने से ही सेव्य की प्रीति होती है, वह प्रसन्न होता है। इसीलिए भगवत्-प्राप्ति का एकमात्र उपाय है—शुद्धा-प्रीति या शुद्धा-भक्ति।

भक्ति ही भगवान् के निकट ले जाती है, भक्ति ही भगवान् को दिखाती है। परम पुरुष भक्ति के वश हैं। इसलिये भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है।

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु जी द्वारा दिखाये गये मार्ग पर चलना ही हरेक व्यक्ति के लिए व्यक्तिगत-शान्ति का, पारिवारिक शान्ति का व विश्व शान्ति का एकमात्र पथ है।

काम व क्रोध में आसक्त मनुष्य राजसिक और तामसिक नीति का सहारा लेकर रजोगुण और तमोगुण के विषयों को ग्रहण करके परस्पर हिंसा-द्वेषादि से पराजित होते हैं एवं निरन्तर अशान्ति की आग में जलते रहते हैं।

श्रीभगवत्-प्रेम ही मनुष्यों की सुख-शान्ति का एकमात्र उपाय है तथा ये ही आपस में लड़ रहे देशों में एकता लाने व आपसी शान्ति-स्थापना कराने में समर्थ है।

शिष्य का करणीय धर्म है—गुरुपूजा।

जाति और वर्ण के भेद की भावना से रहित होकर सभी जीवों के प्रति यथायोग्य दया करनी चाहिए।

वैष्णवों को मर्यादा देने वाले भक्तों को ही शुद्ध – वैष्णव कहा जाता है।

जो उन्नत भक्त हैं, वे श्रीहरि के वैभव – स्वरूप – वैष्णवों में भगवान् का साक्षात् अधिष्ठान मानकर वैष्णव – पूजा में आसक्त रहते हैं।

हमारे शरण्य हैं — श्रीगुरुदेव। वे श्रीभगवान् के आश्रय – जातीय विष्णु – तत्व होने के कारण हमारे सेव्य भी हैं और भगवान के सेवक भी। गुरुदेव इन दो रूपों से प्रकट रहकर हमारी सेवा ग्रहण करते हैं व हमें उपदेश देकर कृतार्थ करते रहते हैं।

यदि हम कोई बुरा उद्देश्य लेकर सदगुरु के पास न जायें तो ये निश्चित है कि उनकी करुणामयी इच्छा के कारण ही उनके विशुद्ध, चिन्मय स्वरूप के दर्शन प्राप्त करके कृतार्थ हो जायेंगे। हमारे अधिकार के तारतम्यानुसार वे हमें भगवान श्रीकृष्ण जी के विभिन्न रसों की सेवा का सुयोग प्रदान करते हैं।

केवल मात्र श्रीविष्णु के शरणागत एकान्त भक्त को ही श्रीविष्णु के वास्तविक स्वरूप की उपलब्धि हो सकती है। ये सभी अनुभूतियाँ केवल भगवान् की कृपा के द्वारा ही हो सकती हैं।

श्रीविष्णु की सेवा करने की अपेक्षा वैष्णव-सेवा करने वालों की महिमा अधिक है।

अनन्य श्रीभगवद्भक्त ही श्रीभगवान् की कृपा की प्रकाशमूर्ति हैं। अनन्य-भक्त की बाहरी कोई भी वर्ण व आश्रम आदि के द्वारा पहचान नहीं है। वे किसी भी वर्ण या आश्रम में हो सकते हैं तथा उसी वर्ण या आश्रम में रहते हुए भी वे गुणातीत व शुद्धस्वरूप हैं।

एकान्त, शुद्ध, प्रेमिक-भक्त की कृपा ही जगत् में श्रीभगवत् कृपा है व उनकी सेवा ही जगत् में साक्षात् भगवत्-सेवा है।

स्वतःसिद्ध, आनन्दमय-भगवद्तत्व का आविर्भाव, शरणागत के हृदय में ही होता है।

शरणागति में गीता की शिक्षा की परिसमाप्ति है। शरणागत होने के बाद शरण्य श्रीभगवान् की प्रीति के अनुसार अनुशीलन-प्रचेष्टा को भक्ति कहते हैं।

शरणागति के चरम आदर्श के रूप में श्रीमद्भागवत के अनुसार गोपियों के चरित्र को देखा जाता है क्योंकि श्रीकृष्ण की प्रीति के लिये उनका अकरणीय कुछ भी नहीं है।

श्रीभगवद्-भजन की महिमा जानने के लिये शुद्ध-भक्त का संग और शुद्ध-भक्त के मुख से भक्तिशास्त्र सुनना कर्तव्य है।

नित्यप्रति शास्त्र-श्रवण द्वारा चित्त मार्जित होता है। किसी के द्वारा साक्षात् रूप से कोई भी दोष या त्रुटि दिखाने पर कई बार हमारे अभिमान में आघात लगता है और हमारा चित्त क्षुब्ध हो जाता है, किन्तु शास्त्र किसी पर व्यक्तिगत रूप से आक्रमण नहीं करता। इसलिए अभिमानी व्यक्ति उसे सुनकर स्वयं की कमियों का अनुभव करने का सुयोग प्राप्त करता है। इस अनुभूति के बाद अभिमानी व्यक्ति उनको परित्याग करने में यत्नवान होता है।

दूसरे-दूसरे मतलबों को छोड़कर श्रीभगवत्-प्रीति के उद्देश्य से श्रीभगवान की कथा श्रवण-कीर्तन के समान शीघ्र मंगल प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन और कुछ भी नहीं हो सकता।

अपराध-युक्त होकर कीर्तन करने पर नाम का वास्तविक फल नहीं देखा जाता।

जिस प्रकार भगवान् सर्वशक्तिमान हैं, भगवन्नाम भी उसी प्रकार सर्वशक्तियुक्त हैं। भगवान् के 'वाच्य' और 'वाचक' ये दो स्वरूप होने पर भी इन दोनों में भगवान् के 'वाचक' स्वरूप की अर्थात् हरिनाम की महिमा ही अधिक है।

दुर्भाग्यवश ही सर्वसन्तापहारी, सर्वशुभप्रद, सर्वाभीष्टप्रद श्रीनाम की महिमा में हम विश्वास नहीं जमा पाते।

अन्दर और बाहर दोनों से भगवान् का अनुशीलन करना चाहिए, अंततः बाहर से न होने पर भी अन्दर से जो भगवद्-चिन्तन करते हैं, वे साधु हैं। क्योंकि केवल बाहर से दिखावा करने पर भी अन्दर से जो खाली हैं, वह कदापि साधु नहीं हैं।

जो निरन्तर हरिकीर्तन करते हैं, वे ही वास्तविक मौनी हैं और वे ही साधु हैं। कारण, उनको दूसरी चिन्ता का अवसर ही नहीं है।

'नाम' साक्षात् भगवान् हैं। ये हरिनाम हमारी भोग की वस्तु नहीं हैं। अपनी भोग की वस्तुओं को लाकर देने के लिये, अपनी खुशामद करवाने के लिये या अपनी सेवा करवाने के लिए जब हम भगवान् को बुलाते हैं तब भगवान् नहीं आते, उस समय भगवान् की माया आकर हमसे अपनी खुशामद करवाती है। इसलिये कर्तृत्वाभिमान से हरिनाम नहीं होता है।

अपने सांसारिक जीवन के लिए परमार्थ को नष्ट नहीं करना चाहिये।

केवल मात्र निष्काम व शुद्ध-भक्ति के द्वारा ही भगवान् या भगवत-प्रेम प्राप्त होता है।

श्रीकृष्ण के नाम, रूप, गुण व लीलायें दुनियावी भोगोन्मुख इन्द्रियों की ग्रहण योग्य वस्तु नहीं हैं, ये तो सेवोन्मुख चिन्मय इन्द्रियों के द्वारा देखी व समझी जा सकती हैं।

प्रेमिक – भक्त अपने शुद्ध अन्तःकरण में दर्शन करने वाले अपने आराध्यदेव को बाहर में प्रकाशित करते हैं। प्रेमिक – भक्तों द्वारा अपने आराध्यदेव के निरन्तर दर्शन, उनकी सेवा और उनके विरह – दुःख को हटाने के लिये भगवान, भक्त के लिये अर्चावतार रूप से अवतीर्ण होते हैं तथा साथ ही साथ आनुषंगिक भाव से अन्यान्य जीवों का भी कल्याण करते हैं।

श्रीगुरु – वैष्णव व भगवान अपने सेवकों के धैर्य, उनकी सहनशीलता व उनकी निष्ठा की परीक्षा भी करते हैं।

परमेश्वर को न मानने से परमेश्वर को कोई नुकसान नहीं होगा, हम ही उनकी कृपा से वन्चित रह जायेंगे। परमेश्वर से ही जीव निकले हैं, परमेश्वर में ही स्थित हैं व परमेश्वर के द्वारा ही रक्षित हैं व पालित हैं। यही नहीं, परमेश्वर की सत्ता से ही जीवों की सत्ता है। अतः परमेश्वर की भक्ति करना ही जीवों का कर्तव्य है, धर्म है, स्वार्थ है व परमार्थ है। परमेश्वर के विमुख रहकर जीव, स्वतन्त्र भाव से अपना कल्याण नहीं कर सकता और न ही सुखी हो सकता है। परमेश्वर जब स्वयं अपनी इच्छा से गुरु, पुरोहित व भास्कर आदि को अवलम्बन करके भक्तों को सुख देने के लिए जिस भी श्रीमूर्ति के रूप में प्रकटित होते हैं, उसे कहते हैं—श्रीविग्रह। इसे भगवान् का कृपामय अर्चावतार कहा जाता है। भक्तों के दिव्य दर्शन में वे श्रीविग्रह साक्षात् भगवान् होते हैं।

मूर्ख लोग अपनी दुनियावी बुद्धि व इन जड़ीय आँखों से श्रीविग्रह की तत्वानुभूति नहीं कर पाते व उन्हें साधारण मूर्ति के रूप में दर्शन करते हैं।
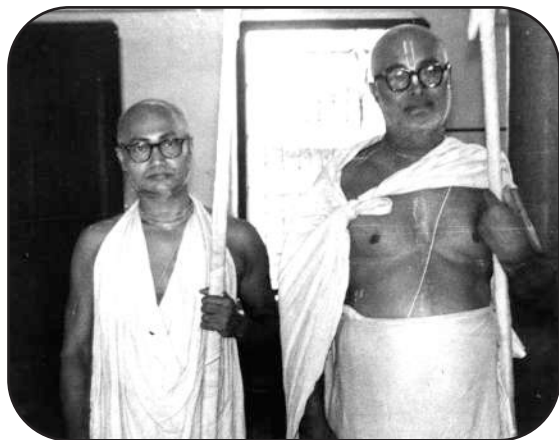
वैष्णव कभी भी अपने को वैष्णव नहीं समझता, इसलिए वह किसी दूसरे वैष्णव से सेवा लेने में संकोच करता है, किन्तु वैष्णव–सेवा को छोड़कर जीव की गति नहीं है, यही कारण है कि करुणामय श्रीहरि की इच्छा से जीवों का उद्धार करने के लिए बहुत उच्च कोटि के वैष्णवों में भी बिमारी देखी जाती है। व्याधिग्रस्त अवस्था में वैष्णव कुछ करने में असमर्थ होता है, ऐसे में भाग्यवान जीव को उनकी सेवा का सुअवसर मिलता है।

वैकुण्ठ वस्तु में नाम तथा नामी का आपसी भेद नहीं होता, क्योंकि वहाँ अज्ञान और माया का प्रवेश नहीं है। यही कारण है कि श्रीचैतन्यदेव एवं उनकी वाणी में कोई भेद नहीं है।

श्रेय पथ के पथिक ही श्रीचैतन्यदेव जी को व उनकी वाणी को अपने प्राणों से भी अधिक चाहते हैं व इन्हें ही अपनी वांछित वस्तु समझते हैं।

इन्द्रियजन्य भोगों के फल भले ही वर्तमान में इन्द्रिय सुखकर लगते हों लेकिन परिणाम में ये दुःख, भय व शोक को देने का कारण बनते हैं।

'श्री चैतन्य वाणी' तो प्रेम-वाणी है। ये प्रेम ही व्यक्तिगत रूप से व सामूहिक रूप से आपसी मित्रता व एकता करने में समर्थ है। इसके इलावा दुनियावी अर्थनीति, समाजनीति, राष्ट्रनीति व कोई भी प्राकृत धर्म-नीति विश्व वासियों में, देश में, किसी भी जाति में व परिवार में शान्ति की स्थापना करने में, कभी भी समर्थ नहीं हो सकती – ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है।

मन्दबुद्धि एवं दुर्भाग्यशाली जीवों की वैष्णव-सेवा में रुचि नहीं होती। वह अज्ञानतावश वैष्णव को कर्मफल में बँधे जीव की तरह समझ कर उन पर अश्रद्धा करते हैं।

भक्त के आनुगत्य में जो भगवान् की प्रीति के लिए रहता है, वही श्रेष्ठ भक्त है। इसलिए ऐसे भक्त का आनुगत्य करना ही भक्ति प्राप्ति का रास्ता है। भक्त की कृपा जिन पर होती है, भगवान् की कृपा भी उन पर होती है।

तुम लोग सब निष्ठा के साथ हरि–भजन करना। जैसी भी अवस्था में रहो, हरिभजन कभी नहीं छोड़ना। यही मेरी तुम लोगों के पास प्रार्थना, अनुरोध, वान्छा और उपदेश है।

हरेक अवस्था में तथा हरेक स्थान पर तुम लोग हरि–भजन करना।

श्रेष्ठ वैष्णव को हर समय सम्मान देना। इस में किसी प्रकार का संकोच न करना। इस से तुम्हारा मंगल होगा।

भक्त का आनुगत्य ही वैष्णवता है।

नन्दनन्दन श्रीकृष्ण को श्रीचैतन्य महाप्रभु जी ने परमतम् तत्व या सर्वोत्तम्–आराध्य कहा है।

कांन्चनपाड़ा धाम

परमपूज्य श्रील भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज जी का जन्म स्थान
(कांन्चनपाड़ा, ज़िला फरीदपुर, बंगला देश)

जिस प्रकार, वृक्ष की जड़ में पानी देने से वृक्ष की टहनी, फूल पत्ता व तना इत्यादि सब तृप्त हो जाते हैं; जिस प्रकार पेट में खाना देने से पूरा शरीर व सब इन्द्रियाँ तृप्त हो जाती हैं, उसी प्रकार सब कारणों के कारण, सभी प्राणियों के साथ सम्बन्धयुक्त अद्वयज्ञानतत्व, सर्वव्यापक, अच्युत, श्रीहरि की सेवा के द्वारा सभी प्राणियों की सेवा या तृप्ति हो जाती है।

– श्री श्रीमद् भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज जी।

Visit us at :
www.sreecgmath.org
www.sreecgmathchandigarh.org